सितंबर १९९८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

दुन्निग्गहस्स लहुनो, यत्थकामनिपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु, चित्तं दन्तं सुखावहं॥ धम्मपद - ३५

जिसका निग्रह करना बड़ा कठिन है, जो बहुत हल्के स्वभाव का है, जो जहां चाहे झट चला जाता है - ऐसे चित्त का दमन करना उत्तम है। दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है।

धारण करे तो धर्म

स्वदर्शन ही प्रमुख है

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुजी के प्रवचनों की **चौथी कड़ी**)

चित्त को नितांत विशुद्ध कर देने वाली विपश्यना विद्या का अभ्यास करने के लिए जब कभी किसी विपश्यना-तपोभूमि में आओगे तो वहां दस दिन रहते हुए, वहां के सारे नियमों का पालन करते हुए, सभी प्रकार के अनुशासन और पांच शीलों का बड़ी कड़ाई के साथ पालन करते हुए, अपने सांस के प्रति जागरूक रहने का काम आरंभ करोगे। सारी साधना अपने प्रति, अपने बारे में जो सच्चाई प्रकट हो रही है उसके प्रति जागरूक रहने की है। सारी साधना आत्म-दर्शन की साधना है, स्वदर्शन की साधना है, सत्यदर्शन की साधना है। जिसको "मैं, मैं" कहेजा रहा हूं, या जिसको "मेरा, मेरा" कहेजा रहा हूं। आखिर क्या है? किसको "मैं, मेरा" कह रहा हूं?

यह सारा शरीर-स्कंध, क्या यह 'मैं' है? क्या यह मेरा है? क्या मेरी आत्मा है? इसे अनुभूतियों से जानना है। बुद्धि के स्तर पर तो बचपन से सुनते आये। इसलिए बुद्धि पर तो लेप लगे ही हैं और इसे स्वीकार भी करते हैं कि अरे, यह शरीर तो नश्वर है, तो भंगुर है। यह तो अनित्य है, यह 'मैं' कैसे? यह 'मेरा' कैसे? यह मेरी 'आत्मा' कैसे? नहीं, शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, ऐसा बचपन से सुनते और मानते आये हैं। पर सच्चाई क्या है? हमें इस सच्चाई को अनुभूतियों के स्तर पर जानना है।

इसी प्रकार यह जो चित्त-स्कंध है, मानस का स्कंध है, इसे "मैं, मेरा" कहेजा रहे हैं। क्या सचमुच यह 'मैं' है? क्या यह 'मेरा' है? या क्या यह 'मेरी आत्मा' है? तो बचपन से जैसे सुनते आये हैं उसके आधार पर कहते हैं, अरे, यह मन तो बड़ा अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है, जड़ है। यह 'मैं' कैसे होगा? यह मेरा कैसे होगा? यह मेरी आत्मा कैसे होगी? यह तो मानने की बात हुई, जानने की बात नहीं हुई। और अब जानना है। इस शरीर के बारे में अनुभूति के स्तर पर पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करनी है। इस चित्त के बारे में पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करनी है। चित्तवृत्तियों के बारे में पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करनी है। और इसकी जानकारी पूरी हो जाय तो देखेंगे, जैसे-जैसे इसकी जानकारी के क्षेत्र में आगे बढ़ते जा रहे हैं तो स्थूल सच्चाइयों से काम शुरू करते हुए उससे सूक्ष्म, उससे सूक्ष्म, उससे सूक्ष्म सच्चाइयां प्रकट होती चली जायेंगी। द्रष्टाभाव से केवल जानते जायेंगे, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करेंगे तो देखेंगे, मन पर से मैल की परतें उतर रही हैं।

मन पर से मैल की परतें उतरती हैं तो उससे अधिक सूक्ष्म सच्चाइयां प्रकट होती हैं। और परतें उतरती हैं तो और सूक्ष्म सच्चाइयां प्रकट होती हैं। यों शरीर के स्थूल से स्थूल सत्य का दर्शन करते हुए जब आगे बढ़ेंगे तो बढ़ते-बढ़ते ऐसी अवस्था पर पहुँच जायेंगे कि शरीर की सूक्ष्म से सूक्ष्म सच्चाई अनुभूति पर उतर जायगी। तो मानो इस भौतिक जगत की सूक्ष्म से सूक्ष्म सच्चाई अनुभूति पर उतर जायगी।

इसी तरह से चित्त की स्थूल से स्थूल अवस्थाओं से काम शुरू करते-करते उससे सूक्ष्म, उससे सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम सच्चाइयों का निरीक्षण करते-करते देखेंगे, मन के विकार दूर होते-होते एक अवस्था आएगी जब शरीर और चित्त के परे की, परम सत्य की अवस्था अनुभूति पर उतर जायगी, उसका साक्षात्कार हो जायगा।

यह सारा का सारा शरीर-क्षेत्र, यह सारा का सारा चित्त-क्षेत्र अनुभूतियों से देखते जायेंगे, सचमुच नश्वर है, सचमुच भंगुर है। मानने की बात नहीं, अनुभूतियों से जान रहे हैं। सचमुच परिवर्तनशील है। प्रतिक्षण बदल रहा है। इस अनित्यता की सच्चाई के साथ-साथ मन पर के मैल उतरते-उतरते आगे जाकर एक अवस्था आयेगी, जब शरीर और चित्त के परे जो परम सत्य है, जो इंद्रियातीत सत्य है, जो भवातीत सत्य है, लोकातीत सत्य है, जो अजर है, अमर है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, उसका साक्षात्कार हो जाय। अरे, तो जीवन ही बदल जायगा। जीवन तो हर कदम इस रास्ते पर चलते हुए बदल रहा है, पर उस वक्त तो जीवन में बहुत बड़ा मोड़ आ जायगा।

एक बात इसलिए याद रखनी जरूरी है कि इस रास्ते चलने वाला व्यक्ति हमेशा सत्य के सहारे चलेगा। सत्य वह जो मेरी स्वयं की अनुभूति पर उतर रहा है। जो कहीं सुना है, कहीं पढ़ा है और उसकी कल्पना करने लगे, उसे श्रद्धा से मानने लगे या उसे चिंतन-मनन द्वारा स्वीकार करने लगे तो बात नहीं बनती। अनुभूति के सहारे-सहारे अपने बारे में जो सच्चाइयां हैं उनका अनुसंधान करना है। उनको अनुभूतियों के स्तर पर जानना है।

तो पालथी मार कर आराम से बैठ गये। आंखें बंद हैं, मुँह बंद है। वाणी से कोई काम नहीं कर रहे। शरीर से कोई काम नहीं कर रहे। आराम से बैठे हैं। अब अनुसंधान का काम शुरू हो। अपने बारे में याने जिसे "मैं, मेरा" कहता हूं, इस शरीर के बारे में, इस चित्त के बारे में क्या सच्चाई प्रकट हुई? तो सबसे पहले जो सच्चाई प्रकट हुई वह इस श्वास के आने-जाने की सच्चाई प्रकट हुई। कल्पना नहीं है। कोई सुनी-सुनाई बात की मान्यता नहीं है। कोई पढ़ी-पढ़ायी बात की मान्यता नहीं है। अनुभव कर रहे हैं। यह सांस

भीतर आ रहा है। यह सांस बाहर जा रहा है। इस सच्चाई के आधार पर काम शुरू किया। शुद्ध सांस, इसके साथ कुछ जुड़ न जाय। मैं जानता हूं, इसमें कठिनाई होती है। शुद्ध सांस के सहारे-सहारे मन को एकाग्र करना चाहें, तो कठिनाई होती ही है, पर इस मार्ग पर चलने के लिए यह बहुत आवश्यक है।

मैं स्वयं अपने अनुभव से भी जानता हूं और अन्य अनेक लोगों के अनुभव सुने हैं उससे भी स्वीकार करता हूं कि इस सांस के आवागमन की जानकारी के साथ-साथ अगर कोई शब्द जोड़ दिया जाय। बार-बार, बार-बार उस शब्द को दोहराते रहें तो देखते हैं कि मन बड़ी जल्दी एकाग्र हो गया। या इसके साथ-साथ कोई आकृति जोड़ दें। कोई रूप, किसी देवी की, देवता की, ईश्वर की, ब्रह्म की, संत की, महापुरुष की जिसके प्रति भी श्रद्धा है, उसकी कोई मूरत की बंद आंखों के सामने कल्पना करने लगें। जैसे कोई नाम जोड़ दें, कोई शब्द जोड़ा तो किसका जोड़ा? किसी देवी का, किसी देवता का, किसी ईश्वर का, किसी ब्रह्म का, किसी संत का, किसी महापुरुष का, जिसके प्रति भी श्रद्धा है उसका नाम साथ-साथ लिये जा रहे हैं। सांस को भी जान रहे हैं, मन ही मन वह नाम भी लिये जा रहे हैं। सांस को भी जान रहे हैं, उसके साथ-साथ कोई आकृति, कोई रूप का भी ध्यान कर रहे हैं, तो देखेंगे कि मन बड़ी आसानी से एकाग्र होने लगा। मन को एकाग्र करने के काम में कम से कम कठिनाइयां आयीं।

यह अपने अनुभव से जानते हुए भी कहता हूं कि नहीं, विपश्यना के मार्ग पर चलना है तो सांस के साथ कोई शब्द जुड़ने न पाये। कोई रूप, कोई आकृति, कोई कल्पना जुड़ने न पाये। नहीं तो भटक जायेंगे। जिस काम के लिए आये हैं उस लक्ष्य तक पहुँचना मुश्किल हो जायगा। पहुँच ही नहीं पायेंगे। अगर हमारा लक्ष्य यह होता कि येन-केन-प्रकारेण किसी प्रकार भी इस चित्त को एकाग्र करना है। बहुत भटकता है, बहुत भागता है। बड़ा चंचल है, बड़ा चपल है। इसको किसी एक आलंबन पर रोकना है। इसे निर्विचार कर देना, निर्विकल्प कर देना ही हमारा अंतिम लक्ष्य हो तो सचमुच हमें कोई न कोई शब्द जोड़ ही देना चाहिए। अथवा हमें कोई न कोई रूप, कोई आकृति, इस सांस के साथ जोड़ ही देनी चाहिए। काम हल्का हो जायगा, काम जल्दी हो जायगा।

लेकिन नहीं, चित्त की एकाग्रता हमारी साधना का अंतिम लक्ष्य नहीं है। चित्त को निर्विचार कर देना, निर्विकल्प कर देना अंतिम लक्ष्य नहीं है। हमारी साधना का अंतिम लक्ष्य है चित्त को निर्विकार कर देना। अगर विकार नहीं निकले और चित्त एकाग्र हो गया, तो लाभ नहीं हुआ ना! तो विकार निकालने के लिए हमें उन गहराइयों तक जाना पड़ेगा जहां विकारों की उत्पत्ति होती है। उनका संवर्धन होता है और संवर्धन होते-होते विकार हमारे सिर पर चढ़ जाते हैं। और हमें जो नहीं करना चाहिए वह कर गुजरते हैं। होश जगा कर हम उनका संवर्धन रोक सकते हैं, उनका उद्गम रोक सकते हैं। होश को ही गहरा, तीक्ष्ण करके जो विकारों की जड़ें हैं, जो पुराना संचय है उसका उत्खनन कर सकते हैं। अंतर्मन की गहराई में दबे विकारों को जड़ से उखाड़ कर निकालना शुरू कर सकते हैं।

यह सारा काम हमें करना है। चित्त की एकाग्रता हमारे इस काम में मददगार होगी। हमारे लिए साधन होगी, साध्य नहीं। अपने बारे में सच्चाई जाननी है। हम अपने मार्ग से न भटक जायँ। क्योंकि जैसे ही कोई शब्द जोड़ा तो धीरे-धीरे देखेंगे कि सांस को तो बिल्कुल भूल जायेंगे, वह शब्द ही प्रमुख होता चला जायगा। बार-बार, बार-बार एक शब्द दोहराते-दोहराते मन एकदम उस शब्द में डूब जायगा। उसी में एकदम समाहित हो जायगा। समाधि तो लग गयी पर हमारे शरीर और चित्त में क्या हो रहा है, इसको देखने का काम रुक गया। किसी मूर्ति की कल्पना के सहारे-सहारे हमारा मन एकाग्र तो हो जायगा। उसी मूर्ति को देखते-देखते उस आलंबन में डूब जायगा, समाहित हो जायगा। समाधि तो लग गयी लेकिन अपने विकारों को जड़ से निकालने का काम बंद हो गया।

अपने बारे में, अपने शरीर और चित्त के बारे में हमें जानना है। यह शरीर का क्या प्रपंच है? यह चित्त का क्या प्रपंच है? इसको जानने के लिए, जो घटना अपने आप घट रही है, बस, हमें उसी के सहारे-सहारे चलना है। अपने भारत के संतों की वाणी में कभी-कभी विपश्यना की गूंज सुनायी दे जाती है। भारत का एक संत कहता है –

"थापिआ न जाइ, कीता न होइ, आपे आपि निरंजनु सोइ।"

'थापिआ न जाइ' –जो सच्चाई प्रकट हो रही है उस पर कुछ आरोपण मत कर देना। अपनी कोई मान्यता का, किन्हीं शब्दों का, किसी आकृति का आरोपण कर मत देना। जो हो रहा है, बस, उसे ही जानना है। अपनी ओर से कुछ करना नहीं है। कोई स्वनिर्मित, कृत्रिम सत्य नहीं। कोई आरोपित सत्य नहीं। इसीलिए संत ने कहा – 'थापिआ न जाइ', और 'कीता न होइ।'

'आपे आपि' –जो सच्चाई अपने आप प्रकट हो रही है, बस, उसी को निरंजन मानो। "अंजन मांहि निरंजन देखो" – यह जो शरीर दीख रहा है, भौतिक शरीर, इसके भीतर हमें उस निरंजन के दर्शन करने होते हैं जिसका कोई रूप नहीं, जिसकी कोई आकृति नहीं। दर्शन करना है माने उसकी अनुभूति करनी है। तो कोई आरोपण नहीं हो। सांस आ रहा है तो बस जान रहे हैं, आ रहा है। सांस जा रहा है तो जान रहे हैं, जा रहा है। सांस बांयी नासिका से गुजर रहा है कि दाहिनी नासिका से गुजर रहा है, लंबा है कि ओछा है। जैसा भी है, यथाकृत नहीं, यथाभूत जान रहे हैं। अपनी ओर से कोई आरोपण नहीं करेंगे। यथा-कल्पित नहीं, यथा-वांछित नहीं। यथाभूत, **आपे आपि** , सांस जो अपने आप आ रहा है, बस, उसे जान रहे हैं। जैसा भी है। तो मन को केवल सांस का एक आलंबन मिला। उसको सहारा देने के लिए और कुछ है नहीं। कोई शब्द नहीं, कोई रूप नहीं, कोई आकृति नहीं। तो भागता है। बार-बार भागेगा, बार-बार ले आओगे। बार-बार भागेगा, बार-बार ले आओगे। कठिनाई होगी। लेकिन इस कठिनाई में से गुजरना बड़ी कल्याणकारिणी बात है।

कोई शब्द इसलिए भी नहीं जुड़ने देते, कोई रूप या आकृति इसलिए भी नहीं जुड़ने देते क्योंकि यह सारा का सारा मार्ग सार्वजनीन है। किसी संप्रदाय से बँधा हुआ नहीं है। जैसे ही कोई शब्द जोड़ेंगे तो अधिकतर क्या शब्द जोड़ेंगे? जिस किसी देवी पर, देवता पर, ईश्वर पर, ब्रह्म पर, अल्लाह-ताला पर, किसी संत पर, किसी महापुरुष पर, किसी गुरु पर, जिस पर श्रद्धा होगी, उसी का

नाम तो बार-बार बार-बार लोगे। और हर समाज का, हर संप्रदाय का, हर संगठन का अपनी-अपनी मान्यता का कोई आदर्श व्यक्ति है, कोई देव है, कोई देवी है, कोई ईश्वर है, कोई ब्रह्म है, कोई संत है, तो वह उसी समुदाय तक सीमित रह गया। हमने किसी एक संप्रदाय का नाम जोड़ दिया, मानो सांस के साथ-साथ कहने लगे – बुद्ध, बुद्ध, बुद्ध, तो जो बौद्ध नहीं हैं वे कहेंगे, हम क्यों बुद्ध कहें? हम तो कहेंगे –राम, राम, राम। तो जो मुस्लिम है वे कहेंगे, हम क्यों राम, राम, राम कहें? हम तो कहेंगे –अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह। तो यूनिवर्सल बात नहीं हुई, सार्वजनीन बात नहीं हुई।

केवल सांस को देख रहे हैं तो सार्वजनीन बात है। इसको सब देख सकते हैं। अपने आप को हिंदू कहने वाला भी, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लिम, सिक्ख, पारसी, यहूदी चाहे जिस संप्रदाय का व्यक्ति हो, चाहे जिस समाज का व्यक्ति हो, बड़ी आसानी से बिना किसी झिझक के सांस को देख सकता है। तो बस, यह एक बड़ी बात ध्यान में रखने की है कि हमारा सारा का सारा मार्ग सार्वजनीन धर्म का मार्ग है। किसी एक संप्रदाय का मार्ग नहीं है।

केवल सांस को देखते हैं तो सार्वजनीन बात है। कोई शब्द जोड़ देते हैं तो कठिनाई होती है। इसी तरह से कोई रूप जोड़ेंगे तो किसी न किसी देवी की, देवता की, ईश्वर की, ब्रह्म की; जिसके प्रति बहुत श्रद्धा है ऐसे संत की, किसी महापुरुष की, अपने गुरु की; कोई न कोई आकृति जोड़ेंगे। लेकिन वह तो उस-उस संप्रदाय तक, उस-उस समाज तक सीमित होगी। सार्वजनीन बात नहीं हुई। सारी की सारी विद्या को, सारे के सारे पथ को सार्वजनीन रखना है तो कोई शब्द, कोई आकृति नहीं जुड़े। यह एक कारण है।

दूसरा कारण जैसे ऊपर बताया कि हम कहीं सच्चाई को छोड़ करके केवल चित्त को समाहित करके न रह जायँ। तो कभी-कभी ऐसा कोई तर्क प्रस्तुत करते हैं, साधना करने के लिए जो आते हैं कि अच्छा, हम किसी देवी का नाम, किसी देवता का नाम, किसी ईश्वर का नाम, किसी संत का नाम, किसी संप्रदाय से संबंधित कोई नाम नहीं लेंगे। कोई रूप हम नहीं जोड़ेंगे। हम केवल सांस आ रहा है तो 'आया', जा रहा है तो 'गया', यही कहेंगे। "आया, गया, आया, गया", इसमें तो कोई संप्रदाय नहीं? तो कोई शब्द साथ जोड़ दें तो काम हमारा हल्का हो जाय। आप क्यों नहीं जोड़ने देते?

तो समझाते हैं, भाई, देखो, केवल सांस देखने का अपना एक कारण है कि सांस के सहारे-सहारे हमें अपने शरीर के, अपने चित्त के बारे में बहुत-सी जानकारियां हो जाने वाली हैं। और जैसे ही कोई शब्द जोड़ा कि सांस की जानकारी तो छूट गयी और यह "आया, गया, आया, गया", धीरे-धीरे यह 'आया, गया' का मंत्र हो जायगा और मन एकदम इसी "आया, गया, आया गया" में समाहित हो गया। सांस को कहीं भूल गये। बात नहीं बनी। इसलिए सांस को जानते रहना अत्यंत आवश्यक है। कोई और आलंबन इसके साथ जुड़ने न पाये। केवल सांस, शुद्ध सांस, आ रहा है तो आ रहा है, जा रहा है तो जा रहा है। मन भटका तो जैसे होश आया, ओ, मेरा मन भटक गया था तो फिर शुरू कर देते हैं। अरे, भटकना उसका स्वभाव है। उसे फिर सांस पर ले आना ही तो अपना काम है। बार-बार भटकेगा, बार-बार ले आयेंगे। बार-बार भटकेगा, बार-बार ले आएंगे। भले बहुत प्रयत्न करना पड़े, बहुत परिश्रम करना पड़े, बहुत पुरुषार्थ करना पड़े। आसानी से मन को समाहित कर दिया तो आगे का काम रुक गया। समाहित तो कर दिया, चित्त एकाग्र हो गया, अच्छा भी लगा, लेकिन हमको जो अपने बारे में सच्चाइयां जाननी हैं। अपने बारे में अनुसंधान करना है, इस सारे शरीर-स्कंध का अनुसंधान करना है, सारे चित्त-स्कंध का अनुसंधान करना है, वह सांस के सहारे-सहारे चलने पर होगा। केवल सांस के सहारे-सहारे चलते-चलते अपने बारे में बहुत-सी जानकारियां अपने आप प्रकट होनी शुरू हो जायेंगी।

शुरू-शुरू में यों लगेगा कि यह सांस तो शरीर की एक प्रक्रिया है। हमारे फेफड़े जो काम कर रहे हैं उसकी वजह से सांस आता है, जाता है; आता है, जाता है। शरीर से इसका संबंध है, मन से इसका क्या संबंध? और हमें तो मन की जानकारी भी करनी है। केवल शरीर की जानकारी करके नहीं रह जायेंगे। मन पर जो विकार आते हैं उनकी जानकारी भी करनी है। तो सांस को देखने के काम में जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगे तो देखेंगे कि हमारा यह सांस केवल शरीर से ही संबंधित नहीं है बल्कि हमारे मन के साथ भी जुड़ा हुआ है और मन के विकारों के साथ भी जुड़ा हुआ है। अगर हम द्रष्टाभाव से देख रहे हैं, साक्षीभाव से देख रहे हैं। उसमें और कोई सम्मिश्रण नहीं कर रहे तो सारी सच्चाइयां प्रकट होने लगेंगी। देखेंगे कि कोई विकार जागा –सांस को देखते-देखते कोई विचार आया, उस विचार को लेकर के कोई विकार जागा, कोई पुरानी बात याद आयी – उसने ऐसा कह दिया था, ऐसा कर दिया था और जागा क्रोध। या किसी बात को लेकर के जागी वासना। किसी बात को लेकर के जागा भय। जागा और ध्यान से देख रहे हैं तो देखेंगे कि सांस ने अपनी स्वाभाविकता खो दी। सांस स्वाभाविक नहीं रहा। जरा-जरा-सा तेज हो जायगा। जरा-सा भारी हो जायगा। जैसे ही वह विकार दूर हुआ, देखेंगे, सांस फिर स्वाभाविक हो गया।

अरे, हमें तो मन के उन विकारों को जानना है ताकि उनको जड़ों से निकाल दें। सांस को भूल करके यदि किसी शब्द के साथ समाहित हो गये तो इस सारी प्रक्रिया को, मन के बारे में जो सच्चाइयां हैं उनको, शरीर के बारे में जो सच्चाइयां हैं उनको कैसे जानेंगे? इसलिए कोई शब्द नहीं जोड़ें। कोई रूप नहीं जोड़ें, कोई आकृति नहीं जोड़ें। शुद्ध सांस, जैसे आ रहा है, जैसे जा रहा है, बस, इसी को साक्षीभाव से जानते रहेंगे, तटस्थभाव से जानते रहेंगे। तब देखेंगे कि एक ओर मन एकाग्र हो रहा है, भले कठिनाई से हो रहा है पर हो रहा है। दूसरी ओर मन एकाग्र हो रहा है और विकारों से विमुक्त हो रहा है। चाहे जरा-जरा ही हो रहा है। लेकिन अगर विकारों से मुक्त नहीं हो रहा, चित्त-शुद्धि का काम बंद कर दिया तो हम लक्ष्य तक कैसे पहुँचेंगे?

तो एकाग्रता के साथ-साथ चित्त विकारों से विमुक्त हो रहा है कि नहीं हो रहा है, इसके लिए सजग रहेंगे। विकारों से मुक्त हो रहा है तो मंगल सध रहा है, कल्याण सध रहा है, मुक्ति सध रही है। अरे, इसीलिए तो काम करते हैं। कैसे विचार-विमुक्त ही नहीं, विकार-विमुक्त हो जायँ? बड़ा मंगल होगा, बड़ा कल्याण होगा। खूब स्वस्ति-मुक्ति होगी, खूब स्वस्ति-मुक्ति होगी।